ध्यान दें:

10

# अर्थापत्तिखण्ड तथा अनुपलब्धिखण्ड

वेदान्तशास्त्र में छः प्रमाण होते है। वे है प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि। इनमें प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द इन प्रमाणों के विषयों में पूर्व पाठ में विस्तार से पढ़ लिया है। इस पाठ में अर्थापत्तिप्रमाण के विषय में तथा अनुपलब्धि प्रमाण के विषय में पढ़ेंगे।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे;

- अर्थापत्ति प्रमा को जान पाने में;
- अर्थापत्ति प्रमाण को जान पाने में;
- अर्थापत्ति के भेद को जान पाने में;
- अनुपलब्धि प्रमाण को जान पाने में;
- अभाव के भेदों को जान पाने में;
- प्रामाण्यवाद का सामान्य परिचय प्राप्त करने में;

## 10.1 ) अर्थापत्तिप्रमाण

अर्थापत्ति प्रमाण इस शब्द का अर्थ होता है, अर्थापत्ति प्रमाकरण। वहाँ पर किस प्रमा का करण है ऐसा प्रश्न होने पर अर्थापत्ति प्रमा का ही करण यहाँ पर ग्रहण करना चाहिए।

कारण यह है कि अर्थापत्तिशब्द प्रमावाचक भी है तथा प्रमाण वाचक भी है। क्योंकि जब अर्थ की आपत्ति होती है तब उसे अर्थापत्ति कहते हैं इस प्रकार से यहाँ पर षष्ठी समास स्वीकार किया जाता है, तब यह शब्द प्रमावाचक होता है। यहाँ पर आपत्ति शब्द का अर्थ है कल्पना होना, अर्थात अर्थ की कल्पना करना। जब अर्थ की आपत्ति होती है जिससे। ऐसा अर्थ करने पर यहाँ पर बहुव्रीहि समास स्वीकृत होता है, तब यहाँ पर यह शब्द प्रमाण वाचक होता है। और इसका अर्थ होता है। अर्थ की कल्पना करना।

ध्यान दें:



उससे अर्थापत्ति प्रमा का जो करण होता है वह ही अर्थापत्ति प्रमाण कहलाता है। इस प्रकार से अर्थापत्तिप्रमाकरण ही अर्थापत्तिप्रमाणत्व होता है, यह लक्षण फलित होता है। उसके बाद अर्थापत्ति प्रमाण के ज्ञान के लिए अर्थापत्ति प्रमा का ज्ञान आवश्यक होता है। इसलिए पहले अर्थापत्ति प्रमा का लक्षण प्रतिपादित किया जा रहा है।

## 10.2 ) अर्थापत्तिप्रमा

'उपपाद्यज्ञानेनोपपादककल्पनम् अर्थापत्तिः' अर्थात् उपपाद्य ज्ञान के द्वारा उपपादक की कल्पना ही अर्थापत्ति प्रमा है। वहाँ पर उपपाद्य किसे कहते है तथा उपपादक क्या होता है। तब कहते है जिसके बिना जो उत्पन्न होता है वह वहाँ पर उपपाद्य कहलाता है। जिसके अभाव में जिसकी अनुपपत्ति होती है वह वहाँ पर उपपादक होता है। जैसे यह मोटा देवदत्त दिन में नहीं खाता है। इत्यादि में दिन में नहीं खाने वाला पीनत्व उपपाद्य है। (पीन स्थूल इस प्रकार से) तथा रात्रि भोजन उपपादक है। वहाँ पर उपपाद्य लक्षण में येन इस पद से उपपादक का ग्रहण करना चाहिए। जैसे प्रकृत में जिस रात्रि भोजन के बिना जो दिन में दिवाऽभुञ्जाननिष्ठपीनत्व है वह उपपाद्य है। उपपादक लक्षण में प्रथम के द्वारा 'यस्य' इद पद के द्वारा उपपादक का ग्रहण करना चाहिए जैसे जिस रात्रि भोजन के अभाव में दिवऽभुञ्जाननिष्ठपीनत्व अनुपपत्ति है, वह रात्रि भोजन ही उपपादक कहा जाता है।

### आशय यह है

दिन में भोजन करने वाला यदि रात्रि में भोजन नहीं करेगा तो वह पीनत्व (मोटापा) को प्राप्त नहीं होगा। लेकिन उसमें पीनत्व देखा जा रहा है इसलिए उसके पीनत्व के उपपत्ति के लिए (समर्थन के लिए ) रात्रि के भोजन की कल्पना करनी चाहिए। उस रात्रि के भोजन के द्वारा पीनत्व की उपपत्ति होता है तथा रात्रि के भोजन के अभाव में पीनत्व की अनुपपत्ति होने के कारण पीनत्व उपपाद्य होता है। अर्थात् अर्थापत्ति प्रमाण होता है। यहां उपपादक संज्ञा फल होता है। अर्थात् उपपदक ज्ञान प्रमा होती है। जिससे मोटा यह देवदत्त दिन में नहीं खाता है इत्यादि में दिवऽभुञ्जाननिष्ठपीनत्व ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण कहलाता है तथा रात्रि भोजन अर्थापत्तिप्रमा होती है।

## 10.2.1 ) उपपाद्यत्वलक्षण

जिसके बिना जो उत्पन्न होता है वह उपपाद्य कहलाता है, इस प्रकार से उपपाद्य का स्वरूप प्रतिपादित किया जा चुका है। उसका ही परिष्कृत लक्षण यह है - तदभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वम् उपपाद्यत्वम्। उसके अभाव को ही यहाँ पर 'तदभाव' कहा गया है। तदभाव का व्याकपक अभाव इस प्रकार से तदभावव्यापकीभूताभावा कहा जाता है। तदभावव्यापकीभूताभाव का प्रतियोगी ही तदभाव्यापकीभूताभावप्रतियोगी कहा जाता है। यह उस पद के उपपादकत्व के द्वारा अभिमत वस्तु को परामर्श कहते हैं। इस प्रकार से मोटा यह देवदत्त दिन में नहीं खाता है, इत्यादि में उसपद से उपपादक के रात्रि के भोजन का ग्रहण होता है। उसका अभाव यहाँ पर रात्रि के भोजन का अभाव होता है। उसका व्यापकीभूताभाव ही दिवाऽभुञ्जाननिष्ठपीनत्वाभाव है। क्योंकि यहाँ जहाँ रात्रिभोजन का अभाव है वहाँ वहाँ दिवाऽभुञ्जाननिष्ठपीनत्वाभाव होता है इस प्रतीति के द्वारा रात्रि भोजन के अभाव का व्यापकीभूताभाव दिवाऽभुञ्जाननिष्ठपीनत्वाभाव होता है। यहाँ पर दिन में नहीं खाने पर रात्रिभोजन के अभाव होने पर पुरुष सामान्य में दिवाऽभुञ्जानत्व समानाधिकरण पीनत्वभाव दर्शन ही प्रमाण है। वह रात्रिभोजन अभाव व्यापकी भूताभाव दिवाऽभुञ्जाननिष्ठपीनत्वाभाव होता है तथा उसका प्रतियोगी दिवाऽभुञ्जाननिष्ठपीनत्व होता है इसलिए प्रकृत में दिवाऽभुञ्जाननिष्ठपीनत्व उपपाद्य है।

ध्यान दें:

## 10.2.2 ) उपपादकत्वलक्षण

जिसके अभाव में जिसकी अनुपपत्ति होती है वह उपपादक होता है तथा उपपादक का स्वरूप प्रतिपादित किया जा चुका है। उसका ही परिष्कृत स्वरूप यह है - उपपाद्याभावव्याप्यभूताभावप्रतियोगित्वम् उपपादकत्वम्।

जैसे मोट देवदत्त दिन में नहीं खाता है इत्यादि में उपपाद्य दिवाऽभुञ्जाननिष्ठपीनत्व है तथा उसका अभाव दिवाऽभुञ्जाननिष्ठपीनत्व का अभाव कहलाता है और उसका व्याप्यभूत अभाव रात्रि भोजन का अभाव होता है। जहाँ-जहाँ रात्रि भोजन का अभाव होता है वहाँ वहाँ दिवाऽभुञ्जाननिष्ठपीनत्व का भी अभाव होता है, इस प्रतीति से रात्रि भोजन का अभाव व्याप्यत्व होता है। उसका प्रतियोगी रात्रि का भोजन होता है। इसलिए रात्रि का भोजन उपपादक है।

## 10.2.3 ) अर्थापत्तिभेद

अर्थापत्ति के दो प्रकार होते हैं। दृष्टार्थापत्ति तथा श्रुतार्थापत्ति।

### दृष्टार्थापत्ति

दृष्ट से शब्देतर प्रमाण प्रमिति अर्थ के द्वारा अदृष्ट अर्थ की कल्पना दृष्टार्थापत्ति कहलाती है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति कभी समुद्रतट पर गया। वहाँ उसने समुद्रतट पर पड़ी हुई सूक्ति को देखा। लेकिन दृष्टिदोष के कारण वह अच्छी प्रकार से यह नहीं जान पाया की यह सूक्ति है। लेकिन उसने सोचा की यह चांदी है। इस प्रकार से दृष्टिदोषवश उसको शीपि में चाँदी का ज्ञान हो गया। उसके बाद जब उसने पास में जाकर के देखा तब उसके भ्रम का निराकरण हो गया की यह चाँदी नहीं है अपितु शुक्ति ही है। यदि शुक्तिकादि में प्रतीयमान रजत सत्य होता तो उस व्यक्ति की ऐसी निषेध बुद्धि नहीं होती की यह रजत नहीं है। लेकिन वहाँ पर उसकी निषेध बुद्धि होता है। इसलिए सीपी आदि में दिखाई देने वाली चाँदी सत्य नहीं है अपितु भ्रम है, इस प्रकार की निषेध बुद्धि उस व्यक्ति की हो जाती है। इसलिए यहाँ पर दृष्ट अर्थ के द्वारा अदृष्ट मिथ्यात्व रूप की वह व्यक्ति कल्पना करता है इसलिए यह दृष्टार्थापत्ति कहलाती है। यह चाँदी नहीं है इस प्रकार के निषिध्यमानत्व का ज्ञान प्रमाणभूत अर्थापत्ति होता है। प्रतीयमान रजत मिथ्या है, यह निश्चय फलभूत होता है अर्थात् यहाँ पर प्रमाभूत अर्थापत्ति होती है। इस प्रकार से अन्य स्थान पर भी जानना चाहिए। जैसे शुक्ति में यह रजत नहीं है शुक्ति में यह रजत नहीं है यह उपपाद्य होता है तथा मिथ्यात्व उपपादक होता है।वहाँ पर उपपाद्य के लक्षण में येन इस पद से उपपादक का ग्रहण करना चाहिए। जैसे प्रकृत में जिस मिथ्यात्व के बिना यह रजत नहीं है इस प्रकार से सिद्ध होता है। इसलिए 'यह रजत नहीं' है यह उपपाद्य कहलाता है। उपपादक के लक्षण में सर्वप्रथम यस्य इस पद के द्वारा उपपादक का ग्रहण कहना चाहिए। जैसे जिस मिथ्यात्व के अभाव में जिसका यह रजत नहीं है इस प्रकार की उपपत्ति होती है, इसलिए वह मिथ्यात्व उपपादक है।

### श्रुतार्थापत्ति

श्रुत अर्थ से जो आपत्ति की कल्पना की जाती है। वह श्रुतार्थापत्ति इस प्रकार के व्यवहार वाली होती है। जैसे आत्मज्ञान युक्त व्यक्ति शोक को पार कर जाता है। अर्थात् आत्मज्ञान वाला व्यक्ति बन्धन रहित होता है यहाँ अर्थ यहाँ पर इस श्रुति वाक्य का है। इस प्रकार से इस श्रुति के द्वारा आत्मज्ञान-बन्धविगमहेतु इस प्रकार से प्रतिपादित होता है। लेकिन यह शब्दी प्रतीति तब ही उपपन्न होती है जब शोकशब्दवाच्य का बन्धनमिथ्यात्व हो न की अन्य प्रकार से। कारण यह है कि वास्तविकता के (तत्व

ध्यान दें:



के, सत्य के) अर्थ का जिस किसी भी ज्ञान से नाश होने योग्य नहीं है। लेकिन श्रुति वाक्य तो प्रमाण ही है। इसलिए श्रुतिवाक्य प्रमाण के द्वारा कल्पना की जाती है की बन्धन सत्य नहीं है अपितु वह मिथ्या ही है। यहाँ पर आत्मज्ञानी व्यक्ति शोक से तर जाता है, इस वाक्यार्थ बोध की अनुपपत्ति के द्वारा बन्धन मिथ्यात्व कल्पित होता है। इस प्रकार से यहाँ पर बन्धनमिथ्यात्व उपपादक है तथा शब्द प्रतीति उपपाद्य है। उससे प्रकृत मे बन्धनमिथ्यात्व से के बिना शब्द प्रतीति अनुपपन्न होती है। इसलिए वह बन्ध नमिथ्यात्व उपपादक है। जिस बन्धनमिथ्यात्व अभाव में जिस शब्दज्ञान की अनुपपत्ति होती है वह शब्दज्ञान वहाँ पर उपपाद्य कहलाता है। इस प्रकार से उपपादकत्व बन्धनमिथ्यात्व का नाम प्रमा है। उपपाद्यत्वात् शब्द प्रतीति करण प्रमाण कहलाती है। इसी प्रकार श्रुतार्थापत्ति का अन्य उदाहरण है। जीवित देवदत्त घर में नहीं है। यह भाव होता है की जीवित व्यक्ति या तो घर में रुकता है या फिर बाहर तीसरी कोई गति हैं ही नहीं। वहाँ जीवित देवदत्त घर में नहीं है ऐसा सुनने पर जीवित के घर में नहीं होने से बहि:सत्व (बाहर होना ) बिना अनुपपन्न के अपने आप सिद्ध होता है। देवदत्त बाहर है यह निश्चय होता है। इसलिए यहाँ पर कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। वहाँ पर जिस के बिना जीवित गृह में असत्व अनुपपन्न है इसलिए वह बहि: सत्व यहाँ पर उपपादक है। जिसके अभाव में बहि: सत्व का अभाव होता है। तथा बहि: सत्व के अभाव में जिसकी अनुपप्ति होती है वह गृहसत्व की अनुपपत्ति कहलाती है। इसलिए वह जीवित गृहासत्त्व यह उपपाद्य है। इस प्रकार उपपाद्य के गृहासत्त्वज्ञान से उपपादक के बहि: सत्त्व की कल्पना की जाती है। इसलिए यहाँ पर जीवितगृहसत्त्वज्ञान करण ही अर्थापत्ति प्रमाण होता है। तथा बहि: सत्वज्ञान के फल का नाम ही अर्थापत्तिप्रमा है।

## श्रुतार्थापत्ति के भेद

श्रुतार्थापत्ति भी दो प्रकार की होती है। अभिधानानुपपत्ति तथा अभिहितानुपपत्ति। शाब्दबोध अनुपपत्ति स्थल में श्रुतार्थापत्ति होती है जो प्रतिपादित की जा चुकी है। वह शाब्दबोध अनुपपत्ति भी दो प्रकार की होती है शब्द अनुपपत्ति तथा अर्थ अनुपपत्ति। इसलिए उसके भेद से श्रुतार्थापत्ति के भी दो प्रकार के आवश्यक होते हैं।

## अभिधानानुपपत्ति

जहाँ वाक्य के एकदेश के श्रवण में अन्वय अनुपपत्ति के द्वारा अन्वय अभिधान उपयोगी पदान्तर की कल्पना की जाती है वहाँ अभिधानानुपपत्ति होती है। अभिधान अनुपपत्ति का दूसरा नाम तात्पर्य अनुपपत्ति भी है। जैसे किसी व्यक्ति के द्वारा 'द्वार बन्द करो' इस वाक्य के स्थान पर वाक्य के एकदेश केवल द्वार का प्रयोग किया गया। लेकिन वक्ता यह समझना चाहता है कि द्वार बन्द करो। अर्थात् वक्ता का यहाँ पर द्वार को बन्द करना यह तात्पर्य है। इस प्रकार से श्रोता प्रकरणादि के माध्यम से समझ जाता है। लेकिन वक्ता के द्वारा प्रयुक्त वाक्य में बंद करो यह पद नहीं है। उससे द्वार रूपी कर्म में द्वार बन्द करो, यह अर्थ तो होने योग्य नहीं है। इसलिए यहाँ पर वक्ता का तात्पर्य अनुपपन्न कहलाता है। इसलिए तात्पर्य की उपपत्ति के लिए बन्द करो इस पद का श्रोता अध्याहार कर लेता है। उसके द्वारा द्वार को बन्द करो यह अर्थ प्रकृत वाक्य से लगा लिया जाता है। जिससे तात्पर्य की अनुपपत्ति का परिहार हो जाता है। यहाँ पर द्वार बन्द करो यह तात्पर्य होता है, बन्द करो यह उपस्थापक पद बिना अनुपपन्न होते तथा बिना सुने इसकी पदान्तर से कल्पना कर ली जाती है। जिसका द्वार बन्द करो यह तात्पर्य उपपाद्य होता है। उसका ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण कहलाता है। बन्द करो इस पद का अध्याहार उपपादक कहलाता है। इसलिए बन्द करो इस पद का ज्ञान यहाँ पर अर्थापत्ति प्रमा है।

ध्यान दें:

## अभिहितानुपपत्ति

जहाँ पर वाक्यगत का अनुपपन्नज्ञात्व होने से सत् अर्थान्तर की कल्पना की जाती है वहाँ अभिहिता अनुपपत्ति देखनी चाहिए। जैसे स्वर्ग की कामना के लिए ज्योतिष्टोम यज्ञ का आयोजन करो यह श्रुति का वचन है। इसका अर्थ है कि स्वर्ग की कामन करने वाले पुरुष को ज्योतिष्टोम यज्ञ का आयोजन करना चाहिए। इसलिए इस अर्थ के द्वारा ज्योतिष्टोम यज्ञ का स्वर्गसाधनत्व समझना चाहिए। ज्योतिष्टोम यज्ञ की समाप्ति के बहुत समय बाद यजमान को स्वर्ग का लाभ प्राप्त होता है। इसलिए स्वर्ग लाभ के प्रति ज्योतिष्टोमयाग साक्षात् कारण होने योग्य नहीं है। तो फिर ज्योतिष्टोम यज्ञ स्वर्ग का कैसे है। इसलिए यहाँ पर ज्योतिष्टोमयज्ञ स्वर्गसाधन है इस वाक्य के अर्थ की अनुपपत्ति होती है। इसलिए अनुपपन्न होते हुए उस अपूर्व रूप से अर्थान्तर की कल्पना होती है। तथा उस अर्थान्तर से स्वर्ग की प्राप्ति होती है यह फल होता है। अर्थात् ज्योतिष्टोम अपूर्व को जन्म देता है तथा वह अपूर्व अन्त: करण में विद्यमान पुण्य कहलाने वाल गुण विशेष होता है। तथा वह पुण्य स्वर्ग के लाभ तक रुकता है।

प्रकृत में ज्योतिष्टोम स्वर्ग का साधन है यह इस वाक्य का अर्थ उपपाद्य है। अपूर्व उपपादक है। इसलिए ज्योतिष्टोमस्वर्गसाधन यह वाक्यार्थ ज्ञान कारण है। इसलिए यहाँ पर अर्थापत्ति प्रमाण है तथा अपूर्वज्ञान प्रमा है। इसलिए अर्थापत्ति ही प्रमा है।

## यहाँ पर यह विशेष है

नैयायिक लोग चार प्रमाण मानते है। प्रत्यक्ष,अनुमान,उपमान और शब्द। उनके द्वारा अर्थापत्ति प्रमाण स्वीकार किया नहीं जाता है। वे कहते हैं कि अर्थापत्तिप्रमाण के अनुमान में ही अन्तर्भाव होता है। उनके मत में अर्थापत्ति प्रमाण का केवलान्वयी अन्तर्भाव है। लेकिन वेदान्त सिद्धान्त में केवलान्वयी पदार्थ ही स्वीकार नहीं किया जाता है। इसलिए वहाँ पर अन्तर्भाव नहीं हो सकता है।

## पाठगत प्रश्न 10.1

1. अर्थापत्तिपद के दो अर्थ कौन-कौन से हैं?
2. अर्थापत्तिप्रमा का लक्षण क्या है?
3. अर्थापत्तिप्रमाण का लक्षण क्या है?
4. यह देवदत्त मोटा है तथा यह दिन में नहीं खाता है इस उदाहरण में उपादक तथा उपपाद्य क्या है?
5. उपपाद्य का लक्षण लिखिए।
6. उपपादक का लक्षण लिखिए।
7. अर्थापत्ति के कितने भेद होते है?
8. श्रुतार्थापत्ति के कितने भेद होते है?
9. श्रुतार्थापत्ति का उदाहरण क्या है?

ध्यान दें:



## 10.3 ) अनुपलब्धि

छः प्रमाणों में सबसे अन्यतम प्रमाण अनुपलब्धि है। अनुपलब्धि इस शब्द में नञ् तत्पुरुष समास है। उसका विग्रह है न उपलब्धि अनुपलब्धि। जिसका अर्थ है उपलब्धि का अभाव। उपलब्धि के अभाव के प्रमाण से अभाव विषय का ज्ञान उत्पन्न होता है। उसका लक्षण होता है - ज्ञानकरणाजन्याभावानुभवासाधरणकारणम् अनुपलब्धिरूपं प्रमाणम्। अर्थात् ज्ञानरूपी जो करण तथा उससे उत्पन्न जो अभाव का अनुभव उसका साधारण कारण, इस प्रकार का विग्रह होता है। अर्थात् ज्ञान रूप करण के द्वार जो उत्पन्न होता है वह ज्ञानकरणजन्य कहा जाता है। ज्ञानकरणजन्य का जो अभाव विषयक ज्ञान उसका जो असाधारण करण वह ही अनुपलब्धि प्रमाण कहा जाता है। इसका अर्थ है कि ज्ञानरूप जो करण होता है उससे उत्पन्न जो अभाव का अनुभव होता है वह अभाव का ज्ञान कहलाता है। उसका जो असाधारण कारण वन अनुपलब्धि प्रमाण समझना चाहिए। इस प्रकार से ज्ञानकरणाजन्याभावानुभवासाधारणकारणत्व अनुपलब्धि प्रमाण का लक्षण फलित होता है। यहाँ पर यह भाव है कि वहाँ अनुमिति प्रमा का करण व्याप्तिज्ञान होता है तथा उपमिति प्रमा का करण सादृश्य ज्ञान होता है, और शब्द प्रमा का करण पदज्ञान होता है। वहाँ पर इन ज्ञानरूप करणों के द्वारा अजन्य जो अभाव विषयक अनुभव होता है। उसका असाधारण कारण ही अनुपलब्धि प्रमाण कहलाता है। जैसे भूतल में घट का अभाव होता है। उसका ज्ञान घट की अनुपलब्धि होता है। इसी प्रकार घट की अनुपलब्धि से घट के अभाव का ज्ञान होता है। इसी प्रकार पट की अनुपलब्धि से पट के अभाव का ज्ञान होता है। इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी समझना चाहिए। इसलिए घटादिवस्तु के ज्ञान के अभाव से घटादिवस्तु के अभाव का ज्ञान होता है। इस प्रकार से उस उस वस्तु के ज्ञान का अभाव ही करण कहलाता है। तथा उस उस वस्तु के अभाव का ज्ञान ही फल है यह सिद्ध होता है। इस प्रकार घटादिवस्तु के ज्ञान का अभाव करण कहलाता है अर्थात् अनुपलब्धि प्रमाण होता है जिससे घटादिवस्तु का अभाव फल होता है अर्थात् प्रमा होता है।

### यहाँ पर यह विशेष है

यदि अभाव विषयक ज्ञान के प्रति अनुपलब्धिकरण स्वीकार किया जाए तो जैसे जाग्रत अवस्था में घटादि के अभाव का ज्ञान अनुपलब्धि द्वारा होता है। वैसे ही शयन काल में भी घट के अभाव आदि का ज्ञान होना चाहिए क्योकि उस समय भी घटादियों कि अनुपलब्धि सत्व होती है। लेकिन शयन काल में अभावविषयक ज्ञान नहीं होता है। और धर्माभावविषयक ज्ञान तथा अधर्म भाव विषयक ज्ञान भी अनुपलब्धि के द्वार ही होता है। लेकिन कहते है कि वेदान्तियों के द्वारा तो धर्माभावाविषयकज्ञान अधर्माभावविषयकज्ञान तो अनुमान प्रमाण के द्वारा होता है न कि अनुपलब्धि के द्वारा ऐसा प्रतिपादित भी है। इसलिए यहाँ पर प्रश्न होता है की यदि अनुलब्धि प्रमाण हैं तो शयन काल में ज्ञान क्यों नहीं होता है और धर्म अभाव विषयक ज्ञान तथा अधर्म अभाव विषयक ज्ञान अनुलब्धि के द्वारा क्यों नहीं होता है। यहाँ पर वेदान्ति कहतें हैं कि केवल अनुपलब्धिमात्र के द्वारा ही अभाव का ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है अपितु योग्य अनुपलब्धि के द्वारा अभावविषयक ज्ञान उत्पन्न होता है। यदि योग्य अनुपलब्धि नहीं हैं तो अभाव विषयक ज्ञान भी नहीं होता है। इस प्रकार अभाव विषयकज्ञान के प्रति योग्य अनुपलब्धि कारण सिद्ध होती है।

तब कहते हैं कि योग्य अनुपलब्धि किसे कहते है। तो यहाँ पर कहा जाता है - तर्कित-प्रतियोगिसत्त्व-प्रसञ्जित-प्रतियोगिकत्वं अनुपलब्धेः योग्यत्वम्। अर्थात् तर्कित से (अपादित से) प्रतियोगित्वसत्व से प्रसञ्जत प्रतियोगी जिसका अनुपलम्भ होता है वह तर्कित-प्रतियोगिसत्वप्रसञ्चित-प्रतियोगिक कहलाता है उसका भाव तर्कित-प्रतियोगतिसत्त्व-प्रसञ्जत-प्रतियोगत्व होता है। अर्थात्

ध्यान दें:

जिसका अभाव ग्रहण किया जाता है उसका जो प्रतियोगी होता है, उसके सत्व के अधिकरण में तर्कपूर्वक प्रसञ्चित अपादानयोग्य प्रतियोगी उपलब्धिस्वरूप जिस अनुपलम्भक होता है वह तर्कित-प्रतियोगिसत्व प्रसञ्चित प्रतियोगिक होता है। उसका भाव तर्कित- प्रतियोगिसत्त्व-प्रसञ्चित-प्रतियोगिकत्व होता है। इसका यह भाव है कि प्रकाश युक्त भूतल में यदि घट नहीं है तो वहाँ पर घट का अभाव होता है। इस प्रकार से वहाँ पर विद्यमान घट के अभाव का ज्ञान घट की अनुपलब्धि के द्वारा होता है। इसलिए यहाँ पर जो अनुपलब्धि होती है वह योग्य अनुपलब्धि कही जाती है। क्योंकि प्रकृत में घट के अभाव का ग्रहण होता है। इसलिए उसका प्रतियोगी घट होता है। उसके सत्व से अधिकरण में प्रसञ्चित अपादायोग्य प्रतियोगी उपलब्धि स्वरूप होता है। कारण प्रकृत में कह सकते हैं कि यदि यहाँ पर घट हो तब ही उपलब्धि हो। यहाँ पर जो अनुपलब्धि होती है वह योग्य अनुपलब्धि कही जाती है। उसके द्वारा ही घट का अभाव विषयक ज्ञान उत्पन्न होता है। इसका यह भाव है कि जिस अधिकरण में यह कहा जा सकता है कि यदि यहाँ घट होता तो उसकी उपलब्धि होती। परन्तु (वह) नहीं है। इसलिए उसकी अनुपलब्धि है इसलिए उस अधिकरण में जो अनुपलब्धि है वह ही योग्य अनुपलब्धि है। जिस प्रकाश से प्रकशयुक्त भूतल में घट के अभाव की दशा में यह कहा जा सकता है की यदि यहाँ पर घट हो तो उसकी उपलब्धि होता तो उसकी उपलब्धि होती। नहीं है। इसलिए उसकी अनुपलब्धि है। इसलिए प्रकाशयुक्त भूतल में घट की जो अनुपलब्धि होती है वह ही योग्य अनुपलब्धि कही जाती है। इसलिए उसके द्वारा घट के अभाव का ज्ञान होता है। अन्धकार युक्त भूतल में तो घट के अभाव के सत्व होने की दशा में भी यह नहीं कह सकते हैं की यदि यहाँ पर घट होता तो उसकी उपलब्धि होती। इसलिए अन्धकारयुक्त भूतल में जो उपलब्धि होती है। वह योग्य अनुपलब्धि नहीं होती है। इसलिए उसके द्वारा घट के अभाव का ज्ञान नहीं होता है। इसलिए शयनकाल में भी घट के अभाव सत्व होने की दशा में भी यह नहीं कह सकते हैं की यदि यहाँ पर घट होता तो उसकी उपलब्धि होती। इसलिए शयन काल की जो अनुपलब्धि होती है वह भी योग्य अनुपलब्धि नहीं होती है। इसलिए उससे भी उस घट के अभाव का ज्ञान नहीं होता है। इसलिए धर्म तथा अधर्म की सत्व दशा में भी यह नहीं कह सकते हैं कि यहाँ धर्म होता अथवा अधर्म होता तो उसकी उपलब्धि होती, वह नहीं है। इसलिए उसकी अनुपलब्धि है। इसलिए धर्म की तथा अधर्म की जो अनुपलब्धि होती है वह योग्य अनुपलब्धि नहीं होती है। अपितु अयोग्य अनुपलब्धि ही होती है।

## 10.3.1 ) अभावभेद

अनुपलब्धि प्रमाण से अभाव विषयक ज्ञान होता है यह प्रतिपादित किया जा चुका है। उस प्रकार के अभाव विषय वाला ज्ञान के विषय का अभाव वेदान्त मत में चार प्रकार का होता है। वे इस प्रकार है- प्रागभाव:, प्रध्वंसाभाव:, अत्यन्ताभाव:, तथा अन्योन्याभाव:।

### प्रागभाव

'होगा' इस प्रकार की प्रतीति का जो अभाव होता है वह प्रागभाव कहलाता है। जिस प्रकार से इस मिट्टी के पिण्ड में घड़ा होगा इस प्रकार से मिट्टी के पिण्डादि कारण में विद्यामान कार्य का अभाव ही प्रागभाव कहलाता है। इसी प्रकार तन्तु में पट होगा यहाँ पर भी प्रतीति विषय का अभाव तन्तु में पट का प्रागभाव होता है। इस प्रकार से कार्य की उत्पत्ति से पूर्व कारण में विद्यामान कार्य का जो अभाव होता है वह प्रागभाव कहलाता है। यह अभाव अनादि तथा शान्त होता है।

ध्यान दें:



## प्रध्वंसाभाव

प्रध्वंसाभाव का अपर नाम ध्वंसाभाव है। जन्यविनाश्यभावत्वम् इस ध्वंसाभाव का लक्षण है। अर्थात् जन्य तथा विनाशी जो अभाव होता है। वह ही प्रध्वंसाभाव इस प्रकार से कहलाता है। जैसे मिट्टी के पिण्डादि में मुद्गरपात के बाद में घट का नाश होने पर घट का प्रध्वंसाभाव उत्पन्न होता है। और भी कपाल के नाश से इसके अभाव का नाश होता है। इसलिए यह भाव जन्य तथा विनाशी दोनों प्रकार का होता है। इस प्रकार का जो अभाव होता है वह प्रध्वंसाभाव कहलाता है। यह घट के नष्ट होने वाला अभाव प्रतीति विषय कहलाता है।

## अत्यन्ताभाव

चार प्रकार के अभावों में सबसे अन्यतम अभवा अत्यन्ताभाव होता है। जो वस्तु कभी नहीं होगी तथा कभी नहीं हुई और कभी नहीं है इस प्रकार से भूत भविष्य तथा वर्तमान में नहीं होने वाली वस्तु का अभाव अत्यन्ताभाव कहलाता है। अर्थात् जहाँ पर अधिकरण में तीनों कालों का अभाव है वह अत्यन्त अभाव है। जैस वायु में रूप नहीं है, इस प्रकार की प्रतीति साक्ष्यवाला अभाव वायु में रूप का अत्यन्ताभाव कहलाता है। भूतल में घट नहीं है इस प्रकार की प्रतीति का साक्षी भूतल में घट का अभाव है। इस प्रकार अन्य जगहों पर समझना चाहिए। इस प्रकार से त्रैकालिकाभावत्व को अत्यन्ताभाव लक्षण कह सकते हैं।

## अन्योन्याभाव

अन्य का अन्य में जो अभाव होता है। वह अन्योन्य अभाव कहलाता है। अर्थात् यह नहीं है इस प्रकार की प्रतीति विषय का जो अभाव हो अन्योन्याभाव कहलाता है। घट पट नहीं होता है, इस प्रकार की प्रतीति से सिद्ध जो घट का अभाव है वह घट का अन्योन्याभाव है। यह अन्योन्या भाव आदि भी है तथा अनादि भी है। इस प्रकार से जहाँ पर अन्योन्याभाव का अधिकरण आदि होता है वहाँ अन्योन्याभाव भी आदि होता है। जैसे घट पट नहीं है, यहाँ पर पटरूपाधिकरण आदि है। इसिलए यहाँ पर अन्योन्याभाव आदि है। जहाँ पर अन्योन्याभाव का अधिकरण अनादि होता है वहा अन्योन्याभाव भी अनादि होता है। जैसे ब्रह्मजीव नहीं है। यहाँ पर अन्योन्याभाव का जीवरूपाधिकरण अनादि है। इसलिए यहाँ पर जो अभाव है वह अनादि है। यह अभाव भेद तथा विभाग तथा पृथक्त्व इस प्रकार से कहा जाता है। इस प्रकार से जैसे यह यह प्रतीति का विषय नहीं है, इस प्रकार का जो अभाव है वह अन्योन्याभाव है। वैसे ही यह इस से अलग हुआ है, यह इस से अलग है, यह इससे पृथक् है। इस प्रकार की प्रतीति विषय का अभाव भी अन्योन्याभाव इस प्रकार से कहलाता है।

## अन्योन्याभाव भेद

अन्योन्याभाव दो प्रकार का होता है। सोपाधिक तथा निरूपाधिक

## सोपाधिक

उपाधिसत्ताव्याप्यसत्ताकत्वं सोपाधिकत्वम। अर्थात् सत्ताव्याप्य सत्ता जिसका भेद है वह भेद उपाधि सत्ताव्याप्यसत्ताक: कहलाता है। उसका भाव उपाधिसत्ताव्याप्यसत्ताकत्व होता है। जैसे घटाकाश मठाकाश नहीं है यह भेद उपाधिसत्ताव्याप्यसत्ताकत्व से सोपाधिक है। जहाँ जहाँ पर आकाशादि भेदसत्ता होती है वहाँ वहाँ पर घटादि उपाधि भेद सत्ता इस प्रकार से भेद सत्ता घटादि उपाधिभेदसत्ता के रूप में व्याप्य होती है। तथा घटादि उपाधिभेद सत्ता व्यापिका होती है। जिस प्रकार से आकाश एक ही होता है लेकिन

ध्यान दें:

घटादि उपाधिभेद से आकाश के भी भेद हो जाते हैं। इसलिए यहाँ पर कह सकते हैं कि उपाधिभेद से जहाँ जो भेद होता है वहाँ जो अन्योन्याभाव होता है वह सोपाधिक कहलाता है। इसी प्रकार से एक ही ब्रह्म के अन्तकरण के भेद होने से जो भेद होता है वह सोपाधिक भेद कहलाता है। क्योंकि ब्रह्म में भेद नहीं होते हैं लेकिन उसकी उपाधिक अन्त:करण का भेद होने से ब्रह्म में भेद प्रतीत होता है। इसलिए जितने अन्त: करण के भेद होते हैं उतने ही ब्रह्म के भी भेद होते हैं।

### निरूपाधिक

उपाधिसत्ताव्याप्यसत्ताकत्वात्यन्ताभाववत्त्व निरुपाधिकत्व का लक्षण है। उपाधिसत्तव्याप्या सत्ता जिस भेद की होती है वह भेद, उपाधिसत्ताव्याप्यसत्ताक कहलाता है। उसका भाव उपाधिसत्ताव्याप्यसत्ताकत्व होता है। तथा उसका अत्यन्त अभाव अपाधिसत्ताव्याप्यसत्ताकत्वान्यन्ताभाव कहलाता है। वह इस प्रकार से उपाधिसत्ताव्याप्यसत्ताकत्वत्यन्ताभाववत्त होता है। अर्थात् उपाधिसत्ताव्याप्यसत्ताकत्व के भेद का अभाव जहाँ होता है वहाँ जो भेद होता है वह निरूपाधिक भेद कहलाता है। जैसे घट पट नहीं होता है यह भेद निरुपाधिक है। क्योंकि यहाँ पर किसी की भी उपाधि नहीं है। इसलिए इस भेद में उपाधि सत्ताव्याप्यसत्ताकत्व नहीं है। लेकिन उपाधि सत्ताव्याप्य सत्ताकत्व अत्यन्त अभावत्व है। इसलिए घट तथा पट में जो भेद होता है वह निरुपाधिक भेद होता है। अर्थात् जहाँ पर स्वभाविक ही भेद होता है वह निरूपाधिक भेद इस प्रकार से कहा जाता है। इस प्रकार से घट मठ नहीं है इत्यादि भेद भी निरूपाधि क भेद होते हैं। इस प्रकार से अन्य जगहों पर भी जानना चाहिए।

## 10.4 ) प्रामाण्यवाद

प्रमाण विषयक पाठों में प्रमाण तथा प्रमा मुख्य विषय होते है। वहाँ पर प्रमा में विद्यमान प्रमात्व को कैसे जाना जाए यह जिज्ञासा निरंतर उत्पन्न होती है। इसलिए ही प्रमाण्यवाद को भी प्रमाण विषय के अन्तर्गत मानना चाहिए।

वह प्रमाण्य तथा अप्रमाण्य स्वत: ही ग्रहण किये जाते है अथवा परत: ग्रहण किये जाते हैं इस विषय में भी शास्त्रज्ञों में मतभेद है। यहाँ पर केवल परिचय के लिए विषय को प्रस्तुत किया जा रहा है। वहाँ विषय में एक पद प्रसिद्ध है जिसका सारांश के रूप में विषय का यह विवेचन होता है

### पद्य

**प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्वत: सांख्या: समाश्रिता:।**
**नैयायिकास्ते परत: सौगताश्चरमं स्वत:॥**
**प्रथमं परत: प्राहु: प्रामाण्यं वेदवादिन:।**
**प्रमाणत्वं स्वत: प्राहु: परतश्चाप्रमाणताम्॥**

सांख्यशास्त्र में प्रमाण्य तथा अप्रमाण्य का स्वत: ग्रहण होता है। नैयायिकों के मत में प्रामाण्य तथा अप्रामाण्य का परत: ग्रहण होता है। बौद्धों के मत में प्रामाण्य का परत: ग्रहण होता है। तथा अप्रामाण्य का स्वत: ग्रहण होता है। मीमांसा के मत में प्रामाण्य का स्वत: ग्रहण होता है तथा अप्रामाण्य का परत: ग्रहण होता है।

जैसे 'यह घट है' यहाँ पर घटविषयक प्रमा उत्पन्न होती है। तथा यह प्रमा है इस प्रकार का प्रमा विषयक विचार उत्पन्न होता है। जैसे घट ज्ञान की कोई सामग्री (माध्यम) होता है उसी प्रकार प्रमा का ज्ञान भी कोई सामग्री होता है। प्रमा में प्रमात्व होता है। यह प्रमात्व ही प्रमाण्य कहलाता है। जिस प्रकार

ध्यान दें:



से प्रमा का ज्ञान उत्पन्न होता है उसी प्रकार प्रमात्व का भी ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसे प्रमा विषयक ज्ञान की कोई सामग्री होती है वैसे ही प्रमात्व विषयकज्ञान की भी कोई सामग्री होती है। जिनक मत में प्रमा विषयक ज्ञान की जो सामग्री होती है वह ही प्रमात्वविषयक ज्ञान की भी सामग्री होती है वे स्वतत्ववादी कहलाते है। जिनके मत में प्रमाविषयकज्ञान की सामग्री तथा उससे भिन्न प्रमात्विषयक ज्ञान की सामग्री होती है वे परतस्त्ववादि कहलाते हैं। अर्थात् ज्ञान दो प्रकार का होता है। जिनमें एक ज्ञान का विषय प्रमा है तथा अपर ज्ञान का विषय प्रमात्व है। दोनों ज्ञानों की भी कोई सामग्री होती है। यदि दोनों ज्ञान सामग्री समाना होती हैं तो स्वतत्व कहलाती है। यदि सामग्री भिन्न होती है तो वह परतत्त्व कहलाती है। जो प्रमा यहाँ ग्रहण की गई है उसमें निष्ठाप्रमात्व भी होता है।

## पाठगत प्रश्न 10.2

1. अनुपलब्धि प्रमाण का लक्षण लिखिए।
2. अनुपलब्धि के योग्यत्व का क्या लक्षण है?
3. अभाव के कितने भेद होते हैं?
4. प्रागभाव का लक्षण लिखिए।
5. प्रागभाव कहाँ पर होता है?
6. प्रध्वंसाभाव का लक्षण लिखिए।
7. प्रध्वंसाभाव कहाँ पर होता है?
8. अत्यन्ताभाव का लक्षण लिखिए।
9. अत्यन्ताभाव कहाँ पर होता है?
10. त्रैकालिक अभाव किसे कहते है?
11. अन्योन्याभाव के स्वरूप को लिखिए।
12. अन्योन्याभाव के भेद कौन-कौन से हैं?
13. सोपाधिक अन्योन्याभाव का लक्षण क्या है?
14. निरूपाधिक अन्योन्याभाव का लक्षण क्या है?
15. प्रामाण्यवाद के प्रमाणत्व में प्रमात्व का क्या अर्थ है?
16. वेदान्ति स्वस्तत्ववदी है अथवा परतस्त्ववादि।

## पाठ सार

इस पाठ में अर्थापत्ति प्रमाण का तथा अनुपलब्धि प्रमाण का निरूपण किया गया है। वहाँ पर अर्थापत्ति यह शब्द व्युत्पत्ति भेद से प्रमावाचक तथा प्रमाणवाचक रूप में प्रतिपादित किया गया है। उपपाद्य का ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण के द्वारा होता है। तथा उपपादक का ज्ञान अर्थापत्ति प्रमा के द्वारा होता है। तदभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्व उपपाद्यत्व होता है। इसी प्रकार उपपाद्याभावव्याप्यभूताभावप्रतियोगित्वम उपपादकत्व होता है। अर्थापत्ति के दो भेद होते हैं श्रुतार्थापत्ति तथा दृष्टार्थापत्ति तथा श्रुतार्थापत्ति के

ध्यान दें:

अभिधनानुपपत्ति तथा अभिहितानुपपत्ति इस प्रकार के दो दो भेद होते हैं।

उसके बाद अनुपलब्धि प्रमाण का विवेचन किया गया है। वहाँ ज्ञानकरणाजन्याभावानुभवासाधरणकारणत्व ही अनुपलब्धिप्रमाणस्य लक्षण है। अनुपलब्धि प्रमाण के द्वारा अभावविषयज्ञान उत्पन्न होता है। यहाँ पर उस उस वस्तु के ज्ञान का अभाव करण तथा उस उस वस्तु के अभाव का ज्ञान फल रूप में सिद्ध होता है। इसी प्रकार घटादि वस्तुओं के ज्ञान का अभाव करण होता है अर्थात् अनुपलब्धि प्रमाण होता है। घटादि वस्तुओं का अभाव ज्ञान फल होता है। अर्थात् प्रमा होती है। लेकिन अनुपलब्धिमात्र से अभाव का ग्रहण नहीं होता है अपितु योग्य अनुपलब्धि के द्वारा ही होता है। धर्म तथा अधर्म अभाव विषयक ज्ञान तो अनुमान प्रमाण से होता है, इन दोनों में योग्य अनुपलब्धि के अभाव से। अनुपलब्धि के द्वारा जिस अभाव का ज्ञान होता है। चार प्रकार का होता है। प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव तथा अन्योन्याभाव। जिसमें होगा इस प्रकार की प्रतीति के विषय का जो अभाव होता है वह प्रागभाव कहलाता है। नष्ट हो चुका है इस प्रकार की प्रतीति का जो अभाव होता है वह प्रध्वंसाभाव कहलाता है। जो प्रतीति का विषय ही नहीं है वह अभाव अत्यन्त अभाव कहलाता है। यह नहीं है इस प्रकार की प्रतीति के विषय का जो अभाव होता है वह अन्योन्याभाव कहलाता है। पाठ के अन्त में प्रामाण्यवाद के सामान्य विवरण का वर्णन है।

## आपने क्या सीखा

- अर्थापत्ति, अर्थापत्ति प्रमा, प्रमाण
- अनुपलब्धि प्रमाण
- अभाव भेद और
- प्रामाण्यवाद का सामान्य परिचय जाना,

## पाठान्त प्रश्न

1. अर्थापत्तिप्रमाण के लक्षण का प्रतिपादन कीजिए।
2. दृष्टार्थपत्ति के लक्षण को लिखिए।
3. श्रुतार्थपत्ति के स्वरूप का प्रतिपादन कीजिए।
4. अभिधानानुपपत्ति के लक्षण को लिखिए।
5. अभिहित अनुपपत्ति के स्वरूप का प्रतिपादन कीजिए।
6. अनुपलब्धि प्रमाण का स्वरूप लिखिए।
7. अभाव के भेदों का वर्णन कीजिए।
8. योग्य अनुपलब्धि का प्रतिपादन कीजिए।
9. प्रागभाव तथा प्रध्वंसाभाव के स्वरूप का प्रकाशन कीजिए।
10. अत्यन्ताभाव तथा अन्योन्याभाव के स्वरूप का प्रकाशन कीजिए।
11. प्रामाण्य का प्रतिपादन कीजिए।

ध्यान दें:



## पाठगत प्रश्नों के उत्तर 10.1

1. अर्थापत्तिप्रमा तथा अर्थापत्तिप्रमाण ये दो अर्थ अर्थापत्तिपद के होते हैं।
2. उपपाद्य के ज्ञान के द्वारा उपपादक की कल्पना करना ही अर्थापत्ति प्रमा होती है।
3. अर्थापत्तिप्रमाकरणम् ही अर्थापत्तिप्रमाण कहलाता है।
4. पीनोऽयं देवदत्तः दिवा न भुङ्क्ते इस उदाहरण में रात्रिभोजन उपपादकम् तथा उपपाद्य दिवाऽभुञ्जाननिष्ठपीनत्व है।
5. जिसके बिना जो उत्पन्न होता है वह उपपाद्य कहलाता है।
6. जिसके अभाव में जिसकी उपपत्ति होती है वह उपपादक कहलाता है।
7. अर्थापत्ति के दो भेद होते हैं दृष्टार्थापत्ति तथा श्रुतार्थापत्ति।
8. श्रुतार्थापत्ति के दो भेद होते हैं अभिधानानुपपत्ति तथा अभिहितानुपपत्ति।
9. तरति शोकमात्मवित् इति श्रुतिः।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर 10.2

1. ज्ञानकरणाजन्याभावानुभवासाधरणकारण अनुपलब्धिरूप प्रमाण कहलाता है।
2. तर्कित-प्रतियोगिसत्त्व-प्रसञ्जित-प्रतियोगिकत्वं अनुपलब्ध का योग्यत्व होता है।
3. अभाव के चार भेद होते हैं। प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव तथा अन्योन्याभाव।
4. अनादित्वे सति अभावत्व प्रागभाव का लक्षण होता है।
5. प्रागभाव उपादानकारण में विद्यमान होता है।
6. जन्यविनाश्यभावत्व प्रध्वंसाभाव का लक्षण होता है
7. प्रध्वंसाभाव कार्यध्वंस के बाद में नष्ट कार्य के अवयवों में होता है।
8. त्रैकालिकाभावत्व अत्यन्ताभाव का लक्षण होता है।
9. अत्यन्ताभाव, जो वस्तु वर्तमान, भूत तथा भविष्य में न हो अत्यन्ताभाव होता है।
10. अत्यन्ताभाव को
11. अन्य का अन्य में जो अभाव होता है वह अन्योन्याभाव कहलाता है।
12. सोपाधिक, निरूपाधिक
13. उपाधिसत्ताव्याप्यसत्ताकत्वं सोपाधिकत्वम्।
14. उपाधिसत्ताव्याप्यसत्ताकत्वात्यन्ताभावत्व निरूपाधिकत्व।
15. प्रामाण्यपद का प्रमात्व अर्थ है।
16. स्वस्तत्ववादी
17. प्रामाण्यपद का प्रमात्व अर्थ होता है।
18. वेदान्ति जन स्वस्तत्ववादी होते हैं।